



ऐसा करने के लिए वे तरीके जिनमें वह इतिहास की सहायता लेता है या इतिहास से जो अपील करता है वह इतिहास अक्सर जीनोफोबियाइस ,वाद जैसी विचारधारों के तले स्थित होते हैंबहुलतावाद यहाँ तक कि राष्ट्र, ' ;तरह के मामलों में इतिहासकार को निरंतर सतर्क होना पड़ेगाइतिहास के लिए होब्सवाम कहते हैं कि ' राष्ट्र' ्रवादी या नस्लीय या रुढ़िवादी विचारधाराओं के लिए इतिहास एक कच्चे माल की तरह होता हैजैसे , "अफीम होता है हेरोइन के □ दी के लिएऔर हम सभी यह बेहतर जानते हैं कि विश्व में सबसे अच्छी अफीम का क्षेत्र कहाँ है।

या ऐसा इतिहास जो कुछ विशिष्ट ल 'अस्मिता इतिहास' खासकरोगों के लिए लिखा गया हैउसका , अमरीकियों के लिए ऐसा इतिहास जो केवल यहूदियों या केवल" वे कहते हैं कि,वे मजबूती से विरोध करते हैं हालांकि वह उन लोगों के लिए सांत्वना देने वाला इतिहास ,लिखा गया है वह अच्छा इतिहास नहीं हो सकता जरूर हो सकता है जिनके लिए वह लिखा गया है "इसलिए मिथकों में जाति की स्थिति देखने के लिए इस बात का भी ख्याल रखा जाना बेहद □वश्यक है कि वह केवल कुछ लोगों के लिए सांत्वना देने वाला भर विश्लेषण न रह जाएहाल के भारतीय इतिहास लेखन में इतिहासकारों के सर्जनात्मक कार्य तो सामने □ते | जहाँ वे सामान,हैं,्यत: तथ्यों की केन्द्रीयता पर उतना बल नहीं देते बल्कि वृतांतों के अन्दर जाने की कोशिश करते हैं जो विशेषकर उन तथ्यों के निर्माण या विशेषकर अतीत की कल्पना का समर्थन करते हैं।

हम मौखिक इतिहास का तब तक पर्याप्त उपयोग कभी नहीं कर पायेंगे जब तक कि हम बहुत ही सावधानीपूर्वक इसका हल न निकाल लें कि हमारी स्मृतियों में क्या गलत हो सकता हैक्योंकि अतीत तक हम केवल अतीत से , मिथक स्वयं एक तथ्य है और इसलिए इसे अध्ययन और विश्लेषण की जरूरत है |श्र करके ही पहुँच सकते हैंप्र क्योंकि उन लोगों पर संदेह किया जाना भी □वश्यक है जोकहते हैं कि मेरे पास मेरे सत्य हैंमुझे इससे मतलब , |पास साक्ष्य हों मेरा सच महत्वपूर्ण है भले ही □पके,नहीं कि □पका सत्य क्या है

मिथकों में को समझने के लिए जाति के खासकर भारत में जाति के समाजशास्त्रीय विश्लेषण और 'जाति' अवधारणा को भारत के ही सन्दर्भों में समझा जाना □वश्यक है दरअसल |जाति एक ऐसा समूह है जो प्रजाति या नस्ल से छोटासे (□दिवासी समूह या जनजाति) जातिजातीय समूह के सामान और कई तरह से □दि, यह भी |यह एक ऐसा सामाजिक एकक है जिसका न्यूनतम अंतर्विवाही होना अनिवार्य है |मिलता जुलता है □वश्यक है कि उस एकक केसदस्य जन्मना सदस्यता से बंधे होंवे सामान व्यवसाय करते हों और उनमें एक , सदस्यों के नामकरण की कोई विशेषता और विशिष्ट वेशभूषा उसके,अपना अलग अलग नाम |जाति पंचायत हो समाजशास्त्र की ज्यादातर पाठ्यपुस्तकों |होने से भी उस एकक को अलग जाति के रूप में पहचान मिलती है में जाति को वर्ग की विपरीत श्रेणी में रखकर इसकी पुनरुत्कृत परिभाषा दी जाती है इस परिभाषा के अनुसार वर्ग | दरअसल इस परिभाषा का मतलब केवल यह है की दोनों एक जैसे |एक खुली जाति है और जाति एक बंद वर्ग है अंतर है तो केवल इतना कि वर्ग की सदस्यता ज्यादा | ही हैं लचीली होती हैजबकि वर्ग जैसी गतिशीलता की , जबकि ,न्म उसी का सदस्य रहता हैजो जिस जाति में जन्म लेता है वह □ज |जाति में कोई संभावना नहीं होती उल्लेखनीय यह है कि किसी भी समाज में दोनों ही सामाजिक |वर्गों के सदस्य ऊपर नीचे □ जा सकते हैं श्रेणियों में बहुलता होती है इसलिए सामाजिक संरचना में उनके गठन की अपनी विशिष्टताएं हैअधिकांश | संरचनात्मक संज्ञा मानना चाहिए जिसका एक विशिष्ट उदाहरण हिन्दू समाजशास्त्रीय विश्लेषण में जाति को एक |जाति तथा प्रजाति में भेद नहीं किया जा सकता,इसलिए □दिजाति,समुदाय है

वर्ग की सीमाओं के कोई द्वारपाल नहीं होतेयही कारण है कि उन्हें ,इसलिए वर्गों के नामकरण भी नहीं किये जाते, यह सही है कि एक एक शिशु का जन्म उसके जन्मदाता के चिन्हित वर्ग में होता है ,पहचानना सहज नहीं होता पर वह अपने कृत्यों और कर्मों से ऊपर उठ सकता है या नीचे गिँर सकता हैउसकी |या यथावत रह सकता है, ऐसी जहाँ तक जाति का प्रश्न है वहाँ |यह सामाजिक स्थिति उसके परिवार के स्तर पर निर्धारित होती है

गतिशीलता सिद्धांतरूप में वर्जित हैव्यक्ति की सामाजिक स्थिति जाति के स्तर के हिसाब से तय होती है न कि परिवार के स्तर के हिसाब से। इस दृष्टि से जाति कई परिवारों से मिल कर बनती है। वर्ग और जाति परस्पर जुड़ी हुई अवधारणाएँ हैं। लेकिन समझने की दृष्टि से यहाँ उन पर अलग अलग विचार किया-जाना आवश्यक है। ऐसा करते हुए इस बात पर भी बल दिया जाना चाहिए कि वर्ग एक श्रेणी है जबकि समाजशास्त्रीय दृष्टि से जाति एक समूह है। आदिजाति या जनजाति की परिभाषा पर आम सहमति नहीं बन पायी है क्योंकि सारे विश्व में फैले आदिजाति कहे जाने वाले समूहों में सांस्कृतिक संपर्कों के विभिन्न आयामों के कारण भारी परिवर्तन देखने को मिलते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में सांस्कृतिक संपर्क में आये इन आदिवासी समाजों को पश्चिमी विद्वानों और उपनिवेशवादी राज्यों ने 'ट्राइब' की संज्ञा दी थी जो आज तक उन पर चस्पों है। पर परिभाषा की अब भी तलाश है। यह सही है कि अंतर्वैवाहिकता या एंडोगैमी ही एक ऐसा लक्षण है जो एक आदिजाति को जातितुल्य बनाता- है। अंतर्वैवाहिकता ही जन्मना स्थिति की आधारशिला है। लेकिन जाति को आदिजाति से भिन्न करने वाला यह है कि सम्पूर्ण आदिवासी समुदाय अंतर्विवाही होता है पर जातिव्यवस्था में अंतर्विवाही जातियों का बाहुल्य - जातीय संबंध उसे आदिजाति समूह से भिन्न कर-होता है और अंतरदेते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो जाति की अवधारणा के दो पक्ष हैं -प्रचलित जाति एकक के रूप में जाति और ऐसे कई एककों की प्रणाली के रूप में : व्यवस्था। दुर्भाग्य से भारतीय संदर्भ में इस अंतर को ठीक से नहीं समझा गया है। जिसकी निंदा होती रहती है वह व्यव-है जातिस्था अर्थात् जातियों के बीच के अंतर्संबंध, खास कर इन समूहों को सोपानीकृत व्यवस्था के रूप में ढालना। लेकिन इस चक्कर में कई विश्लेषक और जाति के आलोचक एकक के रूप में जाति को परिभाषित ही नहीं करते।

चूँकि भारत जातिव्यवस्था का परम विकसित गढ़ माना जाता है-, इसलिए यहाँ भारतीय संदर्भ में इन सब पक्षों पर विचार करते हुए जाति की सामाजिक संरचनात्मक परिभाषा देने की चेष्टा की-जानी चाहिए। भारत में जाति को गलत ढंग से समझा जाता रहा है। इसका प्रयोग न केवल आम आदमी बल्कि वैज्ञानिकों और पत्रकारों द्वारा भी अलगअलग अर्थों में कि-या जाता रहा है। भ्रांति पैदा करने वाले तीन प्रयोग मुख्य हैं :

.1.वर्ण वर्ण :हिन्दू समाज को-मुख्यतः चार भागों में बाँटा है। ये वर्ण हैं ब्राह्म(तुर्वर्णच)ण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। भारत में पायी जाने वाली समस्त जातियाँ सिद्धांतरतइन चार वर्णों में बाँट :ी हैं। इस दृष्टि के मुताबिक वर्ण स्वयं जाति न होकर जातियों का समूह है।

.2.गोत्र । गोत्र एक बहिर्विवाही समूह है इसलिए एक ही गोत्रयह जाति के भीतर परिवारों को वर्गीकृत करता है : के लोग एक ही जाति के होते हुए भी आपस में विवाह नहीं कर सकते। विवाह की दृष्टि से लोग अपनी ही जाति में किंतु अपने गोत्र से बाहर विवाह करते हैं। गोत्र को जाति का पर्याय मानना गलत है।

.3.कई बार लोगों की पारिवारिक उपाधि या जन्मस्थल से जुड़ी संबोधनसंज्ञा को भी जाति मान लिया जाता है। - भंडारी : यह भ्रामक है,खजांची, पडगाँवकर, मंगेशकर आदि पारिवारिक संदर्भसंज्ञाएँ हैं-, जातिसूचक नहीं। ऐसे - ही पंजाबी, बंगाली, मद्रासी आदि संज्ञाएँ उन क्षेत्रों की ओर इंगित करती है जहाँ से संदर्भित व्यक्ति आया है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से वर्ण, गोत्र, परिवार की उपाधि या क्षेत्र अथवा पेशे से जुड़ी संज्ञाओं को 'जाति' कहना गलत और भ्रामक है।

वर्ण के स्तर पर भी कहा जा सकता है कि ब्राह्मण की शादी ब्राह्मण से ही होती है, इसलिए ब्राह्मण अंतर्वैवाहिकता की अर्हता के अनुकूल है। पर यह गलत है क्योंकि कई ब्राह्मण जातियाँ हैं और अंतर्वैवाहिकता उपजातियों तक ही सीमित है। यदि यह भेद ध्यान में न रखा गया तो हम 'भारतीय' को भी एक जाति मान लेंगे क्योंकि आम तौर से एक भारतीय की शादी एक भारतीय से ही होती है। समाजशास्त्रियों को चाहिए कि अंतर्वैवाहिकता को उस समूह पर निश्चित करें जिसके नीचे के समूह पर विवाह की संभावना न हो। उदाहरण के

तौर पर यदि किसी जाति में गोत्र के भीतर ही विवाह होने लग जाँएँ तो फिर वह गोत्र की परिभाषा से हट कर एक जाति बन जाएगा और उसके भीतर नये बहिर्विवाही गोत्रों का सृजन आवश्यक हो जाएगा। यही कारण है कि बढ़ती जनसंख्या के साथ आज ऋषिगोत्र को लोग उतनी तरजीह नहीं देते- और लौकिक गोत्र को बहिर्विवाही मानते हैं।

इसी प्रकार जाति से बाहर, पर अपने ही वर्ण के भीतर, विवाह भी होने लगे हैं। यह अंतर्जातीय है, क्योंकि इनमें जाति और वर्ण दोनों की अंतर्विवाहिता बनी रहती है। यदि चार वर्णों के भीतर ही अंतर्जातीय विवाहों की संख्या बढ़ती चली जाए तो हजारों जातियों के स्थान पर घट कर केवल चार जातियाँ ही रह जाएँगी और तब वर्ण का स्वरूप जाति का हो जाएगा। इसी प्रकार अंतरहों की वृद्धि से व्यवस्था के रूप में जाति की संस्था में वर्णीय विवा-आमूलचूल परिवर्तन आयेंगे। और यह सिलसिला शुरू हो गया है।

जाति को परिभाषित करने में कई बाधाएँ हैं। इनमें से मुख्य इस प्रकार हैं :

.1.कई प्रकार की जातियाँ होने के कारण उत्पन्न कठिनाइयाँ हैं कि सभी जातियाँ एक ही ध्यान रखना जरूर : धीरे विकसित हुई है और विभिन्न जातियो-प्रतिकृति के अनुसार नहीं ढली हैं। यह प्रणाली धीरे-धीरे के उद्गम की विभिन्न कहानियाँ हैं। अलग-अलग प्रदेशों में- , अलग-अलग जातियों की अपनी विशिष्ट कार्य-परम्परा है और एक ही प्रदेश में भी विभिन्न जातियों में एक से रीतिरिवाज नहीं होते।-

.2.अन्य जातियों के बारे में जानकारी का अभाव या उनके प्रति उदासीनता के कारण उत्पन्न कठिनाइयाँ आम : लोगों द्वारा वर्ण, जाति, गोत्र, उपजाति, समूह या प्रादेशिक समूह में भेद न कर पाने से जाति का इन विभिन्न समूहों के लिए प्रयोग होता रहता है।

.3.‘आदर्श’ और ‘यथार्थ’ के बीच अंतर से उपजी भ्रांतियाँ आज के संदर्भ में चतुर्वर्ण का आदर्श चरितार्थ नहीं : होता क्योंकि समस्त जातियों के बारे में यह कहना कठिन है कि कौनसी जाति किस वर्ण से उत्पन्न हुई है। - न्हें भी चतुर्वर्ण के सोपानक्रम में अवस्थित करना कठिन है। जाति की कालांतर में जो नयी जातियाँ उभरी हैं उ लोचनीयता और परिवर्तनशीलता से उत्पन्न कठिनाइयाँ भी हैं जो जाति को परिभाषित करने में बाधक हैं।

इस आम धारणा के बावजूद कि जाति बड़ी कठोर और अलोचनीय है, भारतीय समाज के अध्येताओं ने ऐसी कई प्रक्रियाओं का पता लगाया है जिनके प्रभाव में जाति की सीमाएँ बदलती गयी हैं। ऐसे उदाहरण हैं जहाँ एक जैसे दिखने वाले समूह मिलकर एक हो गये हैं। ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जहाँ एक जाति बँट कर दो या अधिक जातियों को जन्म दे चुकी है। जाति से बहिष्कृत परिवारों द्वारा समुचित संख्या होने पर अपनी अलग जाति बनाने की मिसालें भी हैं। यहाँ एक जैसा नाम होने से पैदा होने वाली कठिनाइयों का जिक्र भी जरूरी है। कुछ ऐसी जातियाँ हैं जो उसके सदस्यों द्वारा किये जाने वाले व्यवसाय के नाम से जानी जाती हैं। कुछ उस स्थान के नाम पर जानी जाती हैं जहाँ से उनके पूर्वज आये थे, या उस भाषा के आधार पर जानी जाती हैं जो वे बोलते हैं।

इन कठिनाइयों पर नज़र डालने से साफ हो जाता है कि जाति की भिन्नभिन्न परिभाषाएँ पायी जाती हैं। - लगे हुए हैं राजनीतिक दल इन भ्रामक धारणाओं का लाभ उठाते हुए जाति की सीमाओं के विस्तार में क्योंकि लोकतंत्र में संख्या का महत्त्व है। समाजशास्त्री भी कभी तो जाति की एकक के रूप में और कभी एक व्यवस्था के रूप में परिभाषा देते आये हैं। कई ऐसे हैं जो इन दोनों की मिलीजुली विशेषताओं को गिना कर रह जाते हैं। - छ ऐसी ही हैद्युर्गे की परिभाषा भी कु.एस.जी— लक्षणों की सूची। जाति और वर्ण तथा जाति और उपजाति के लिए एक ही संज्ञा का उपयोग भी भ्रांत धारणाओं को प्रश्रय देता आया है। भारतीय भाषाओं में ‘सब कास्ट’ के लिए कोई शब्द ही नहीं है। वर्ण को जाति और जाति को उपजाति मानना भयंकर भूल है।

जाति की एकक के रूप में परिभाषा एमनाडेल के सुझाये तरीके से देना उचित होगा। न .एफ.एस.ाडेल का कहना है कि प्रत्येक चिह्नित पदमें तीन प्रकार (जिसके लिए उन्होंने भूमिका या रोल का प्रयोग किया है) स्थिति-के गुणों का स्तरण होता है। ये हैं परिधीय, समुचितप्रासंगिक, तथा मूलभूत या धुरीय परिधीय गुण या लक्षण वे हैं जिनके होने या न होने से या उनमें बदलाव आने पर भी भूमिका की प्रभावकारिता में कोई कमी नहीं आती। समुचित या पर्याप्त प्रासंगिक लक्षण वे होते हैं जिनके बदलने या अनुपस्थित होने पर भूमिका के अवबोधन और प्रभावकारिता में अंतर आता है और भूमिका का निर्वाह अपूर्ण सा रहता है।

मूलभूत या धुरीय लक्षण वे होते हैं जिनके बदलने या न होने पर भूमिका की पहचान ही समाप्त हो जाती है। प्रचलित परिभाषाओं के वस्तुविश्लेषण के आधार पर योगेश अटल ने एकक के रूप में जाति को इस प्रकार - या धुरीय लक्षण के अनुसार किसी एकक का न्यूनतम अंतर्विवाही होना मूलभूत : परिभाषित किया है; समुचित-प्रासंगिक लक्षण के अनुसार उस एकक में जन्मना सदस्यता, समान व्यवसाय और जाति पंचायत होना; परिधीय लक्षण के रूप में एकक का अपना नाम, उसके सदस्यों के नामकरण की कोई विशेषता और विशिष्ट वेशभूषा होना। इस परिभाषा के अनुसार समाज का वही समूह जाति कहा जा सकता है जो न्यूनतम स्तर पर अंतर्विवाही हो। 'न्यूनतम' उपसर्ग का इस परिभाषा के लिए महत्त्व है। जाति के स्तर के नीचे लोग जिन समूहों में बँटते होते हैं वे बहिर्विवाही होने चाहिए। इस विशेषता के बिना जाति का कोई महत्त्व ही नहीं रह जाता, क्योंकि जाति ऊपर के अन्य समूह भी अंतर्विवाही होते हैं पर उन्हें जाति की संज्ञा नहीं दी जा सकती। एक अन्य बिंदु की ओर ध्यान आकर्षित करना भी यहाँ आवश्यक है। किसी भी समूह को जब हम अंतर्विवाही कहते हैं तो उसका अर्थ यह होता है कि वह समूह यौनसाथी देने में समर्थ है-; अर्थात् उस समूह के भीतर विवाह संभव ही नहीं वरन अपेक्षित भी होता है। किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि इस समूह के बाहर विवाह नहीं हो सकते। जब एक जाति किसी कारण दो हिस्सों में बँट जाती है तो भी उनमें अंतर्विवाह हो सकते हैं। इसी प्रकार हिंदू समाज में अनुलोम और प्रतिलोम विवाहों का प्रचलन रहा है। अनुलोम विवाह वे होते हैं जिनमें ऊँची जाति का वर अपने से नीची जाति में विवाह कर वधू लाता है। प्रतिलोम इसका ठीक विपरीत है जहाँ ऊँची जाति की कन्या नीची जाति के पुरुष से विवाह करती है और अपने पति की जाति में प्रवेश करती है। जिन स्थितियों में अणुलोम या प्रतिलोम विवाह की मनाही होती है और विवाह केवल जाति के भीतर ही संपन्न होते हैं उसे आइसोगैमी अर्थात् कठोर अंतर्वैवाहिकता की संज्ञा दी है। यह एक आदर्श स्थिति मानी जा सकती है। पर आज के दौर में जातिगत विवाहों के साथ ऐसे अंतरजातीय विवाह भी अधिकाधिक होने लगे हैं जहाँ अन्य जातियों से लायी गयी वधुएँ पति की जाति की सदस्य बन जाती हैं और उनकी संतानें पैतृक व्यवस्था के कारण पिता की ही जाति की जन्मजात सदस्य हो जाती हैं। न्यूनतम अंतर्विवाही कहने का अभिप्राय यह है कि जाति के स्तर के नीचे उस समूह में कोई अंतर्विवाही एकक का मूलभूत लक्षण अंतर्वैवाहिकता है। समूह को न्यूनतम -एकक नहीं होते। इस प्रकार जाति-स्तर पर अंतर्विवाही होना आवश्यक है। इस लक्षण का कठोरता से पालन करने वाले समूह आइसोगैमस यानी समयुग्मी अथवा पृथक्हो जाता है। अंतर्विवाही समूह का एक अन्य पक्ष यह है कि वह बहिर्विवाही विवाही - समूहों में बँटा होता है, जिसे गोत्र कहा जाता है।

एकक के रूप में जाति किसी भी समाज या समुदाय का एक उपसमूह है। समाज या समुदाय के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक कामों में ऐसी प्रत्येक जाति अन्य जातियों के साथ मिलकर भाग लेती है। उनकी यह भागीदारी नियमों से संचालित होती है। इस प्रणाली को हम जातिव्यवस्था कह सकते हैं।-

जाति व्यवस्था को भी तीन लक्षणों में बाँटा जा सकता है। मूलभूत धुरीय/लक्षण जिसके तहत एक समाज-संस्कृतिमें कार्यरत अंतर्विवाही समूहों का बाहुल्य होना चाहिए; समुचितप्रासंगिक लक्षण जिनके मुताबिक इन - जातियों का सोपानिकरण होना चाहिए; और परिधीय लक्षण जिनके अनुसार जाति से जुड़े व्यावसायिक विशेषीकरण के कारण श्रम विभाजन होना चाहिए।-जब ये तीनों ही लक्षण किसी समाजव्यवस्था में हों तो उसे -

से आसानी से (जनजाति) व्यवस्था कहा जा सकता है। जाति का इस प्रकार प्रयोग करके उसे आदिजाति-तिजा अलग करके पहचाना जा सकता है। यह सही है कि एक आदिजाति में वे सब लक्षण पाये जाते हैं जो एकक के रूप में जाति में पाये जाते हैं। किंतु एक आदिजाति एक व्यवस्था के रूप में समझी जानी चाहिए क्योंकि उसके समुदाय में अन्य कोई जातिव्यवस्था के लक्षण उसमें नहीं पाये -समान एकक नहीं होते। दूसरे अर्थों में जाति-जाते। आदिवासी समाज जातियों में बँटा हुआ नहीं होता। लेकिन जब किसी आदिजाति के लोग पास के ग्रामीण क्षेत्रों में अन्य जातियों के साथ रहने लगते हैं तो फिर वे भी उस ग्रामव्यवस्था में एक एकक बन -व्यवस्था या क्षेत्र-कर रह जाते हैं और जाति ही गिने जाते हैं। अन्य अंतर्विवाही समूहों की भाँति गाँव में रहने वाले आदिवासी परिवार भी एक अंतर्-विवाही समूह बने रहते हैं और इस प्रकार जाति का रूप धारण कर लेते हैं। वे जाति-व्यवस्था का उपांग बन जाते हैं। यही कारण है कि गाँवों में रहने वाले आदिवासी परिवार जैसे राजस्थान के गाँवों में भील और मीणा एवं मध्य प्रदेश में गोंड भी एक भिन्न जाति मान लिए जाते हैं। उनका आदिवासी होना उनका अतीत है। उनका वर्तमान अपने क्षेत्र की जातिव्यवस्था के एकक के रूप में हो जाता है। इनमें से कई तो अपने को हिंदू कहते हैं) क्योंकि हिंदू जीवन। जो धर्मांतरण कर ईसाई (पद्धति में धर्म परिवर्तन की प्रथा ही नहीं है- हो गये हैं वे भी जाति जैसा ही बरताव करते हैं। चूँकि आदिवासियों के लिए संविधान में विशेष सुविधाएँ और प्रावधान दिये गये हैं इसलिए उनका अतीत फिर से जाग रहा है या बाहरी प्रभावों से जगाया जा रहा है। हालाँकि गाँवों की व्यवस्था में वे अब भी जाति की भाँति ही हैं। ढाँचागत दृष्टि से ऐसे समूह को ही आदिजाति या 'ट्राइब' कहना चाहिए जिसमें केवल जाति एकक के लक्षण हों न कि जाति-व्यवस्था के।

मिथकों के इतिहास के लेखनविश्लेषण में उपर्युक्त समाज विज्ञानियों द्वारा विश्लेषित जाति सम्बन्धी बोध को , उनकी विभिन्न अवधारणाओं के आधार पर समझ विकसित किये जाने की आवश्यकता है न कि किसी जाति के किसी एक चरित्र या घटना के आधार पर जैसा कि महाभारत के चरित्रों और घटनाओं के सन्दर्भ में ऐसा अक्सर किया जाता रहता है। घटोत्कच आदि की जातियों की समूह , एकलव्य, बर्बरीक, उपर्युक्त विश्लेषण हमें कर्ण, में या एकक के रूप में कहीं भी विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं कराता बल्कि विभिन्न अनुशासनों में दर्ज वर्ण व्यवस्था और अनुलोम प्रतिलोम विवाह और उनकी संतानों अर्थात् वर्ण संकरों के इक्के दुक्के उदाहरण जरूर उपलब्ध कराता है। इन उदाहरणों के माध्यम से वर्ण व्यवस्था का क्रम वर्णच्युत होना तो दिखाई देता है लेकिन जातिच्युत होने जैसे उदाहरण हमारे सामने नहीं दिखते। इसलिए वर्णों के बीच के विवाह से वर्ण संकरों की | ऐसा किया जाना ठीक भी है , उपस्थिति तो सामने आती है किन्तु जाति संकर जैसी शब्दावली का अभाव है क्योंकि बहिर्विवाह जाति की संरचना को खत्म कर देता है इसलिए जाति संकर जैसी शब्दावली कहीं नहीं है।

मिथकों के इतिहास लेखन का उपर्युक्त आधार ग्रहण अध्ययन और विश्लेषण की मांग करता है ताकि किसी भी मिथक की पड़ताल ठीक ढंग से की जा सके और उन अस्मिताओं को ठीक ढंग से समझा जा सके नहीं तो हमेशा की तरह आख्यानों और उन स्मृतियों की जीवन्तता को बनाए रखकर हम बहुलतावादी बनकर वर्तमान वोटबैंक के माध्यम से राजनैतिक परिवर्तन तो कर सकते हैं लेकिन उस राजनैतिक परिवर्तन के माध्यम से भविष्य में किये जाने वाले सामाजिक परिवर्तन की दिशा ही समाप्त कर देंगे।

#### संदर्भ

1. जे पी राय (2013) (.संपा)अभिनव कदम ,29एरिक हाब्सवाम की भारतीय इतिहाकारों के साथ परिचर्चा रुचिका प्रिंटर्स148-पेज,नई दिल्ली,
2. अभय कुमार दुबे पेज,1-परिभाषा की कठिनाइयां,जाति और जाति व्यवस्था,समाज विज्ञान विश्वकोश (.संपा) 543-541
3. अभय कुमार दुबे जाति और ज,समाज विज्ञान विश्वकोश (.संपा)ाति व्यवस्था 547-पेज,2-तीन लक्षण,

4. अभय कुमार दुबे गैर हिन्दुओं में जाति और ,जाति और जाति व्यवस्था,माज विज्ञान विश्वकोशस (.संपा) 3-छुआछूत और जातियों का सोपानीकरण
5. योगेश अटल (1979), द चेंजिंग फ्रंटियर्स ऑफ कास्ट, नैशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली.
6. जीघुर्य .एस.े (1957), कास्ट ऐंड क्लास इन इण्डिया, पॉपुलर बुक डिपो, बम्बई.
7. ई(1960) (.सपा) लीच .आर., आस्पेक्ट्स ऑफ कास्ट इन साउथ इण्डिया, केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज.
8. जे(1961) हटन .एच., कास्ट इन इण्डिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली,
9. योगेश अटल (2006), चेंजिंग इण्डियन सोसाइटी, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर.

